IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

# भूमंडलीकरण और 'नए युग में शत्रु'

काजल भारद्वाज़
शोधार्थी हिंदी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्विद्यालय

भूमंडलीकरण, बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक से प्रारंभ हुई एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है. मूलतः यह प्रक्रिया व्यापार को लेकर है। 1995 में विश्व व्यापार संगठन (WTO) की स्थापना के बाद यह प्रक्रिया व्यापार लाभ के उद्देश्य से और तेजी से भारत में फैलने लगी। आर्थिक उदारीकरण और निजीकरण इसकी सहयोगी प्रक्रियाएं बनकर उभरी भूमंडलीकरण की इस प्रक्रिया में विभिन्न राष्ट्रों और उनकी व्यापारिक कंपनियों को एक मंच पर लाया जाता है, जिसमें सूचना प्रौद्योगिकी भी पूर्ण सहायता प्रदान करती है। इस बढ़ते व्यापारीकरण ने समाज, शिक्षा, साहित्य, संस्कृति तथा व्यक्ति की निजी प्राथमिकताओं को भी गहरे प्रभावित किया है।

भूमंडलीकरण और उससे प्रभावित भारत जैसे नए औद्योगिकृत देश की जटिलताएं सामाजिक स्तर पर चुनौतियां और आम नागरिक की संपूर्ण प्रक्रिया को लेकर संभावनाओं को समकालीन कविता प्रारंभ से ही व्यक्त करती रही है। 21वीं सदी में आते–आते जहां भूमंडलीकरण की प्रक्रिया नए आयामों तक पहुंची है वही उससे प्रभावित समाज और आम–जन की जटिलताएं और छटपटाहट भी बढो है। समकालीन कवि मंगलेश डबराल ने सदी के इस संकट को बहुत ही सूक्ष्मता और संवेदनशीलता के साथ अपने काव्य संग्रह 'नए युग में शत्रु' में व्यक्त किया है। वर्तमान जीवन शैली और उसमें उपयोग में लाए जाने वाले गैजेट्स को तथाकथित 'आधुनिकता के नाम पर लोग अपनी सुविधा के लिए और उससे भी अधिक 'सोशल स्टेटस' का प्रतीक मानकर उपयोग करते हैं, तो वहीं दूसरी ओर उससे प्रभावित अपने जीवन और समाज के अंधेरे पक्ष पर ध्यान नहीं देते। यह ध्यान न देने की क्रिया अज्ञानता के कारण नहीं है, बल्कि हम जानबूझकर उस पक्ष को नजरअंदाज करना चाहते हैं। ऐसे समय में मंगलेश डबराल की कविताएं सहज ही उन मुद्दों को लेकर पाठक को आंदोलित करती हैं, तो कहीं मित्र की तरह स्मृति के पन्नों से कुछ मूल्यवान निकालकर निरंतर मूल्यहीन होते इस समाज में मूल्य निष्ट होने का प्रमाण भी देती हैं। कवि भगवत रावत के शब्दों में कहें तो 'मंगलेश की कविताएं आज के मध्यमवर्गीय संघर्षरत आदमी की जिंदगी से निकलकर

कुछ इस तरह उसके सामने आ खड़ी होती हैं जिसे जिंदगी की भागदौड़ और आपाधापी में एकाएक कोई ऐसा बहुत पुराना दोस्त मिल जाए जिससे घबराकर आप उससे हमेशा बचने की कोशिश करते रहे हैं लेकिन जिसे कहीं न कहीं चाहते भी रहे हैं।''

नई सदी के साथ–साथ हमारी समस्याएं और हमारा शत्रु भी नए युग में प्रवेश कर चुका है। विडंबना यह है कि यह शत्रु पारंपरिक शत्रु की अवधारणा से बिल्कुल अलग है जो लगातार स्वयं को मित्र बताता है यह शत्रु हर तरफ है, परंतु कहीं दिखाई नहीं देता क्योंकि वह एक सदी का दरवाजा खटखाटाता आता है और उसके तहखाने में चला जाता है। उसने कंप्यूटरों, टेलीविजनों, मोबाइल और आईपैडों की आंतों के भीतर खुद को छुपा रखा है। चमचमाते जूते और कपड़ों में वह कवि को एक फैशन शो में हिस्सा लेता हुआ सा दिखता है। यह 'नया शत्रु' भूमंडलीय बाज़ारवाद है। जो मित्र होने का भरोसा दिलाता हुआ बखूबी अपनी क्रूरता को अंजाम देता है पूरे विश्व को एक गांव में परिवर्तित करते हुए 'वसुधैव कुटुंबकम' का जो सपना दिखाया गया, वह सबको बराबर मानने के मोहजाल में फंसाने की कोशिश मात्र थी। इस छलावे में न सिर्फ अपने उत्पाद बल्कि अपनी संस्कृति को भी दूसरे देश पर थोपना ही उनका लक्ष्य था।

''हमारा भात्रु कभी हमसे नहीं मिलता सामने नहीं आता हमें ललकारता नहीं
हालांकि उसके आने–जाने की आहट हमेशा बनी हुई रहती है
कभी–कभी उसका संदेश आता है कि अब कहीं शत्रु नहीं है
हम सब एक दूसरे के मित्र हैं
आपसी मतभेद भुलाकर आइए हम एक ही प्याले से पिये
वसुधैव कुटुंबकम हमारा विश्वास है' (नए युग में शत्रु)

भूमंडलीकरण अपने मूलभूत आशय में मुक्त अर्थव्यवस्था का पक्षधर है। जिसमें बाजार के हितों के संरक्षण को प्राथमिकता दी जाती है। पहले जहां बाजार आवश्यकता के अनुरूप होता था वहां अब बाजार के अनुरूप आवश्यकताएं पैदा की जाती हैं। यह एक मानसिक गुलामी है, जहां हमारी जीवन शैली, हमारी आवश्यकताएं, हमारी सोच, सब पर किसी और का अधिकार है और हम तथाकथित रूप से स्वतंत्र' 'और स्वतंत्र' होते जा रहे हैं। इस गुलामी की शुरुआत भी छोटी–छोटी चीजों से होती है। जहां हमें यह भनक भी नहीं होती कि जिस वस्तु को हम उपयोग में ले रहे हैं क्या वाकई हमारी आवश्यकता है? कवि मंगलेश डबराल की कविता उन बहुत सुंदर और आकर्षक रंगीन चमकीली पन्नियों में लिपटी हुई हर उस अतिरिक्त चीज़ के आकर्षण के पीछे की मानसिकता को परत दर परत उधेड़ती है।

''इन दिनों दिमाग पर पहले कब्जा कर लिया जाता है
जमीनों पर कब्जा करने के लिए लोग बाद में उतरते हं
इस तरह नई गुलामियां शुरू होती हैं
तरह–तरह की सस्ती और महंगी चमकदार रंग–बिरंगी
कई बार में खाने पीने की चीजों से ही शुरू हो जाती हैं
और हम सिर्फ एक स्वाद के बारे में बात करते रह जाते हैं।''(गुलामी)

इस उद्देश्य गुलामी को आमजन एक सुविधा के रूप में अपनाते हैं जहां अन्याय को भी इस तरीके से जीवन का अंग बना दिया जाता है, कि वह अन्याय सा न लगे। इसीलिए मानसिक तौर पर लोगों को 'विकास' की एक परिभाषा बताई जाती है जो बाजार के ही हितों को साधती है।

'अन्याय का पता न चलने देना अन्याय का कुशल प्रबंधन है
लूट का न देखना लूट की कला है' ('कुशल प्रबंधन कविता से)

और व्यक्ति लूट की इस कला पर भी मोहित है। उसे इसकी गहराई सोचने की न तो फुर्सत ही है, और न ही इसकी कोई इच्छा है। खुशी आजकल इतनी सस्ती वस्तु बनकर रह गई है कि किसी चिंता किसी उदासी के लिए कोई जगह नहीं। परंतु स्थिति की भयावहता को जानकर उस पर उदास होना स्वाभाविक है, जो यदि नहीं है तो होना चाहिए। लेकिन आज उस उदासी को दूर करने के विभिन्न विकल्प बाज़ार ने तैयार किए हैं। जो वास्तविक स्थिति पर चिंतन का समय ही आपको नहीं देते

''लोग अत्याचार को धूल की तरह झाड़ देते हैं
सहसा चिल्ला उठते हैं नहीं नहीं
कहीं से तुरंत कोई खुशी खोज कर ले आते हैं
उसे जमा कर लेते हैं अपने पास जैसे वह सिर्फ
उनके लिए बनी हो

बहुत सारे कपड़े और जूते पहन लेते हैं, बहुत सारा खाना खा लेते हैं' (भूमंडलीकरण कविता से)

यह तत्कालीन समय में संकट को परे धकेलने का एक आधुनिक उपाय है। भूमंडलीकरण ने बाजार के माध्यम से एक नवीन संस्कृति को आम जनता के बीच लोकप्रिय किया जिसे ब्रांडेड संस्कृतिश कहा जाता है। जहां एक कंपनी या देश को आश्वासन का मानक मान लिया जाता है। इस ब्रांडेड संस्कृति का नारा सबसे पहले अमेरिका ने चलाया। इस संस्कृति ने विदेशों की बनी वस्तुओं के प्रति जनता का आश्वासन बढ़ाया और आश्वासन के इस लेवल के आधार पर वस्तु की कीमत पर भी बेलगाम इजाफा किया गया। यहां मूल्य वस्तु का नहीं ब्रांड का चुकाया जा रहा है। ''कोई चलते–चलते हाथ में एक आश्वासन थमा जाता है जिस पर लिखा होता है श्मेड इन अमेरिका'' ('गुलामी'कविता से)

विज्ञापन जगत इस ब्रांडेड संस्कृति की लोकप्रियता में खास भूमिका निभाता है। मल्टीनेशनल कंपनियां देश विशेष के किसी लोकप्रिय अभिनेता या चर्चित खिलाड़ी द्वारा उसका विज्ञापन प्रे मनोवैज्ञानिक धरातल से उस ब्रांड और उत्पाद के अनुकूल तैयार करवाती हैं। हम मात्र उपभोक्ता बन कर रह जाते हैं. ऐसे उपभोक्ता जिसके पास विकल्पों की भरमार

होते हुए भी हम वही चुनना पसंद करते हैं, जिसके लिए अप्रत्यक्ष रूप से हमसे कहा जाता है।

बाज़ार ने सामाजिक और मानवीय मूल्यों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया है। जिसमें मीडिया और नवीन संचार प्रौद्योगिकी की भी अहम भागीदारी है जहां भौगोलिक स्तर पर तो दूरियां कम हो रही हैं लेकिन उनके बीच निर्यात बढ़ते जा रहे हैं। इस नई आर्थिक संस्कृति के कारण अपना ही परिचित अपरिचित सा लगने लगा है। नैतिकता खोखली हो चुकी है, व्यक्ति संवेदनहीनता के साथ– साथ संवादहीनता का भी शिकार होता जा रहा है–

'जहां भी जाता हूं जो भी फोन मिलाता हूं।
अक्सर एक बेगानी सी आवाज़ सुनाई देती है
दिस नंबर इज नॉट एग्ज़िस्ट, यह नंबर मौजूद नहीं है'
(यह नंबर मौजूद नहीं कविता से)

यह बेग़ाना पन सिर्फ व्यक्ति और व्यक्ति के बीच ही नहीं हैं बल्कि व्यक्ति के स्वयं के अस्तित्व की बेगानगी भी है। जहां समय की चुनौतियों, कठोरताओं ने नए बाजारवादी मूल्यों को मनुष्य पर हावी कर दिया है। इस नए समय के बदलते हुए मनुष्य और व्यक्तित्व को देखते हुए मंगलेश डबराल की कविता एक पुरानी मनुष्य की उस निर्मल, निर्दोष सी तस्वीर लेकर आती है। जो उसे इस संवेदनहीन समय में भी स्वयं के वास्तविक अस्तित्व का बोध कराती है

''शायद मेरे चेहरे पर झलक उठेगी इस दुनिया की कठोरताएं, चतुराइयां और लालच इन दिनों हर तरफ इन्हीं चीजों की तस्वीरें ज्यादा दिखाई देती हैं और जिन से लड़ने की कोशिश में
मैं इन पुरानी तस्वीरों को ही
हथियार की तरह उठाने की सोचता हूं' 'पुरानी तस्वीरें कविता से)

आशा से भरी यह कविताएं मनुष्य के लिए एक आलंबन बनती हैं जहां उसकी निर्मलता अभी बाकी है। ऐसे ही कई अन्य कविताएं हैं जहां मंगलेश मानवता के इन सच्चे मूल्यों और उनके परिवर्तित रूप में मनुष्य की स्थिति को दिखाते चलते हैं। जैसे–'जीवन का पाठ', 'खुशी का पाठ', 'प्रेम का पाठ' 'अच्छाई का पाठ' आदि। इन कविताओं में मानवीय मूल्यों का एक आंतरिक पाठ भी साथ चलता है। जिसे पढ़ते हुए पाठक अपने स्वयं के व्यक्तित्व और उससे निर्वासित मूल्यों को महसूस करता चलता है। जो उसमें समाज के प्रति और स्वयं अपने प्रति भी एक अपराध बोध जागृत करता है। वस्तुतः अपराध बोध इस चिंतन के फलीभूत होने क लिए आवश्यक भी है–

''लेकिन अब बहुत देर हो गई है
दुनिया की बहुत सारी सख्ती तुम्हारे भीतर आ चुकी है
बहुत से तेज औज़ार तुम्हारी आत्मा को घिसकर गोल बना चुके हैं।
बाहर निकलते ही तुम एक कवच पहन लेते हो एक छाता तान लेते हो'' ('प्रेम का पाठ' कविता से)

यह छाता उन तमाम मूल्यों का बना हुआ है जो आधुनिकता, तरक्की और सोशल स्टेटस के नाम पर व्यक्ति ने ताना हुआ है। यह भूमंडलीकरण और बाज़ारवादी संस्कृति के ही दिए हुए मूल्य हैं जिनका ढ़ेर सारी वस्तुओं को सर्वसुलभ बनाना था। परंतु उसने वस्तुओं के साथ मूल्यों और संवेदनाओं को भी बाजार की वस्तु में बदल दिया–

'लोभ, क्रोध, ईर्ष्या, ड्रेस के लिए अब कहीं नहीं जाना पड़ता
हर चीज़ समान रूप से मिलने लगी है हर जगह
मनुष्य के संबंध बहुत पतले तारों से बांध दिए गए हैं' (भूमंडलीकरणश्कविता से)

यह समय संवेदनशील व्यक्ति के लिए एक यातना से गुज़रने जैसा है। यह यातना भी मूल्य और विचारों से प्रतिबंध होने के कारण ही है। इस प्रतिबद्धता से व्यक्ति में जहां परिवर्तन की आकांक्षा है वहीं इसे फलीभूत न होते देखने से बेचौनी भी है। मंगलेश की कविता को पढ़ते हुए संवेदनशील व्यक्ति की यह बेचौनी और आशा– निराशा के बीच झूलता व्यक्तित्व अक्सर मुक्तिबोध की श्अंधेरे मेंश कविता की याद दिलाता है

'मैं भी तमाम तस्वीरें औंधी कर देता है
जिन में एक पुल बह रहा है, कुछ सिसकियां उठ रही हैं
एक चेहरा जान बख्श देने की भीख मांग रहा है
एक आदमी कुर्सी पर बैठा अट्टहास कर रहा है' (सोने से पहले कविता से)

व्यक्ति की यह विवशता, तनावग्रस्त मनः स्थिति, एकाकीपन, भूमंडलीकरण के सह–उत्पाद है। इसने आतंकवाद और सांप्रदायिक विद्वेष को भी और गहरा किया है। आज सत्ता और पूंजीवाद के हाथ का खिलौना है। सांप्रदायिक विद्वेष की भी अपनी अलग राजनीति होती है जिसका एक सूत्र बाजारवाद से भी मिलता है। अपनी चुनी हुई कविताओं के संग्रह 'कवि ने कहा की भूमिका में मंगलेश स्वयं कहते हैं इस बाजारवाद और कट्टरता वाद की मिलीभगत को सभी जानते हैं जिसमें से एक ने लालच और सफलता की हमारी निकृष्ट इच्छाओं को सार्वजनिक कर दिया है, तो दूसरे ने हमारे सबसे आंतरिक नैतिक मूल्यों को, हमारे मनुष्य होने को हमारे आत्मिक जीवन को दूषित करते हुए एक हीन मनुष्य में तब्दील कर दिया है। यह खराब किया जा रहा मनुष्य आज जगह–जगह दिखाई देता है जिसमें धैर्य और सहिष्णुता बहुत कम है' हमारे समाज, राजनीति में अब यही वर्ग बहुतायत है। जो बाजार में उदारतावाद और संस्कृति में संकीर्णतावाद का समर्थक है। गुजरात के भीषण दंगों के पीछे के कट्टरतावाद को कवि आम–जन के मासूम सवालों के माध्यम से व्यक्त करता है।

'गुजरात के मृतक का बयान' भले ही एक राजनीतिक कविता हो सकती है परंतु इसका मूल निरंतर जर्जर होती मान्यता पर प्रश्नचिन्ह अवश्य लगाता है। जो पाठक को कहीं गहरे आंदोलित अवश्य कर जाती है।

'मेरे जीवित होने का कोई बड़ा मकसद नहीं था
लेकिन मुझे इस तरह मारा गया
जैसे मुझे मारना कोई बड़ा मकसद हो' (गुजरात के मृतक का बयानश कविता से)

बाजारवाद और भूमंडलीकरण ने नगरों और महानगरों के साथ–साथ छोटे शहरों और गांवों को भी प्रभावित किया है। बहराष्ट्रीय कंपनियों ने नए रोजगार के साथ ही विस्थापन की विभीषिका को भी बढ़ाया है। गांव और छोटे शहरों की एक बड़ी आबादी का महानगरों की ओर पलायन बढ़ा है। इस पलायन ने उस आबादी का अपना घर, अपने लोग, उनका अपनत्व, सब छीन लिया। जिस महानगर के लिए वे अपने गांव को छोड़ कर आए थे वह भी उन्हें अपना नहीं मानता। वे जीवन भर अपनी ज़मीन से जड़ी स्मृतियों में डूबते उतरते रहते हैं। विस्थापन का यह दर्द मंगलेश डबराल की कविता का परिचित स्वर है जहां अपने लोगों और स्थान की स्मृति भी हैं और वापस न लौट पाने की टीस भी है। शहर के एकालाप इसी विस्थापन के दर्द को चित्रित करती हुई कविता है।

असल में मंगलेश डबराल की कविताओं में विस्थापित लोगों की पीछे छूट रहे आत्मीय संबंधों की स्मृतियों की, उजाड़ा जा रहे लोगों की विवशताओं, उनकी छटपटाहट को इतने सहज ढंग से व्यक्त किया गया है, कभी–कभी यह कविताएं सभ्यतागत विमर्श के पास की सी लगती हैं। परंतु यह कवि की सजगता ही है जो इन्हें किसी भी विमर्श वादी नारे से बचाए रखती है। इन कविताओं में कवि के स्वयं के विस्थापन का दर्द भी कहीं कहीं दिखाई दे जाता है। परंतु मंगलेश जहां भोक्ता है, वहीं कवि भी हैं। वे अपने कवि रूप को कविता में बनाए रखते हैं, अपनी गद्य पुस्तक 'कवि  का अकेलापन में उन्होंने स्वयं लिखा है– ''कवि को कविता के भीतर और बाहर एक साथ रहना होता है।''

भूमंडलीकरण ने जहां रोजगार के लिए व्यक्ति को गांव से विस्थापित किया वहां आदिवासियों को उनकी जमीन और जंगल हड़पने की मंशा से विस्थापित किया। बाजारवादी सोच रूपी शत्रु सांस्कृतिक संकीर्णता के कारण आदिवासी संस्कृति से भी घृणा करता है। इस शत्रु को अपनी बनाई संस्कृति से इतर लोग इस दुनिया में व्यर्थ प्रतीत होते हैं। इस शत्रु से सहमति रखने वाले तथाकथित सभ्य लोग इन आदिवासियों को उनके अस्तित्व, उनकी संस्कृति से दूर करते जा रहे हैं। जिसके कारण यह आदिवासी लोग ही महानगरों में घरेलू और दिहाड़ी मजदूर बनने के लिए विवश होते हैं।

'अब क्षितिज पर बार–बार उसकी काली देह उभरती है
वह कभी उदास कभी डरा हुआ दिखता है
उसके आसपास पेड़ बिना पत्तों के हैं और मिट्टी बिना घास की
यह साफ है कि उससे कुछ छीन लिया गया है'('आदिवासी कविता से)

ऐसा नहीं है कि भूमंडलीय यथार्थ समकालीन कविता में पहले व्यक्त नहीं हुआ हो, परंतु मंगलेश डबराल का यह काव्य संग्रह 'नए युग में शत्रु' भूमंडलीकरण के प्रभाव के आंकड़ों से अधिक आम संघर्षरत मनुष्य पर उसके प्रभाव को दिखाता है। जहां हम अपनी सभ्यता के इस संकट को जानते तो हैं परंतु उससे आँख मिलाने को तैयार नहीं होते। मंगलेश डबराल का यह काव्य संग्रह सभ्यता के इस सूक्ष्म किंतु गहरे संकट से मनुष्य का साक्षात्कार कराता है। साथ ही इन कविताओं में मानवीय मूल्यों के प्रति एक आशा, एक भरोसे का भाव भी मिलता है। जो मानवता और कविता दोनों के भविष्य के लिए आवश्यक भी है।

आधार ग्रंथ सूचीः

1. आवाज़ भी एक जगह है–मंगले"ा डबराल
2. नए युग में भात्रु– मंगले"ा डबराल
3. कवि ने कहा–मंगले"ा डबराल
4. कवि का अकेलापन –मंगले"ा डबराल
5. कविता का दूसरा पाठ और प्रसंग–भगवत रावत